गीत माधवी

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

कुसुम पाल
शम्भुप्रसाद बहुगुणा

प्रकाशक—

कुसुम पाल, नीहारिका

राय बिहारीलाल रोड, लखनऊ

मूल्य ढाई रुपया

मुद्रक

नायो प्रेस, हीवेट रोड, लखनऊ

हिम-किन्नर

भाई चन्द्रकुँवर बर्त्वाल (जन्म, वृ० २० अगस्त १९१९ ई०; निधन, रवि १४ सितम्बर १९४७ ई०) आज हमारे बीच नहीं। यही, हमारा तथा हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य है। अपने जीवन पर्यन्त वे साहित्य-साधना में लीन रहे। ख्याति प्राप्त करने की उन्होंने चिन्ता भी नहीं की। हिमालय की वनस्थली में यह सुमन खिला और खिलकर मुरझा भी गया! किसी ने उसे न जाना और न खिलते और मुरझाते ही देखा! यही उस का अंत था।

उनके परिचय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि काव्य के अनन्य उपासक वे थे। साधना में ही इन के जीवन का अधिक समय बीता। काव्य के प्रति उन की अटूट लगन थी। काव्य की तृष्णा उन्हें कुदरती देन थी। उन की सच्ची कविताएँ आप से आप, काव्य-साहित्य से उठ उठ कर हृदय में जगह कर लेती हैं। उन की कविताओं को समझने के लिए कोई यत्न नहीं करना पड़ता। विशेष समझ

या विशेष ज्ञान की तुलाओं के बिना भी वे समझी जा सकती हैं। वे स्वयं ही अंकुर जमा लेती हैं और वे पंक्तियाँ आप से आप मुख से निसृत होने लगती हैं।

उनके काव्य में सृष्टि की सुन्दरता, हृदय की उर्मियों पर कोमल किरणों और रागारुण संध्याओं में कलियों की तरह खिलती है, ज्योत्स्ना में तैरती है, वहल निशा में भी आकाश को घेर लेती है; कभी मधुमती देश की राजकुमारी के दर्शन होते हैं, कभी साम्राज्यों के उत्थान पतन के, कभी फूलों के बीच छिपी ध्वनियों में मुस्कान बोलती है, कभी पतझड़ भर नंगे पाँवों चलने वाले पथिक के दर्शन प्रणयपुरी में नव वसंत के पहले दिन होते हैं, कभी उस प्रेम पुरी में स्वयंवर सभा में देश-देश के शासक रत्न-जटित सिंहासन पर बैठे नज़र आते हैं, कभी एक भिखारी भी वहाँ नज़र आता है, जिस के माथे पर न मुकुट ही है न छाती पर हार ही। उसे अपने प्रेम का विश्वास है, देवकन्या के चरणों का संबल है, वह द्विधा में पड़ जाता है—

हिमगिरि और उदधि के रहते,
क्यों चन्द्रिका कुमारी
होना चाहेगी इस कुलसे
उजड़े तरु की प्यारी !

हाय ! कौन मैं ! हृदय भरा क्यों
यह इतनी आशा से !
इस कुहरे को प्रेम हुआ क्यों !
रवि की दीप्त प्रभा से !

जीवन-साहित्य का विराट् विधान उस की भावनाओं को व्यापक से व्यापक बना देने में समर्थ हुआ है, जिस मधुमय देश की राजकुमारी देवकन्या सौन्दर्य प्रभा हृदय सरस्वती के मंदिर की देहरी पर उसने बाल्यकाल में अपना जीवन अर्पित किया था, उस ने उसी के लिए अपने प्राण उत्सर्ग किए। गीत माधवी उसी महत्कार्य की एक धारा है इस के अंत में भी उस की विराट् भावना की असीम शान्ति विद्यमान है—

भूल गया मैं, भूल गया मैं
उपालंभ वे सारे,
सुख-दुख मिले कुसुम-परिमल बन,
बन मे देवि तुम्हारे!

* * *

कहीं रहो तुम, कहीं छिपो तुम,
तुम प्यारी मेरी भी,
करो किसी को सुखी, बनेगा
वह सुख कुछ मेरा भी!
तुम मेरी ही नहीं अकेली,
तुम प्रिय हो स्वर-स्वर की,
मेरी प्राणों की सुकुमारी,
तुम हो लहर-लहर की!

गीत माधवी की परिणति छोटे गीतों में हुई है। चन्द्रकुँवर जी की चेतना के अंतिम मोती ये छोटे गीत हैं, जो

डाक्टर विनी को हिम शृंगों की वेदना के प्राण बने हैं। पयस्विनी में चन्द्रकुँवर जी की लगभग साढ़े तीन सौ कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, नंदिनी, नागिनी, हिमवंत का एक कवि में भी उनके हृदय की सजल ममता विद्यमान है। कालिदास के अनुयाई इस हिम-किन्नर कवि को पाकर हमारा जीवन तथा हमारा साहित्य धन्य है।

नीहारिका, राय बिहारीलाल रोड, कुसुम पाल
लखनऊ, मार्च १९५० ई०

गीत माधवी

छोटे गीत

[१]

लहरों के कलरव से शीतल
इस छाया के नीचे दो पल,
मैं थके हुए ये पद पसार,
सुन लूँ वह ध्वनि जो बार-बार
आती है निराश प्राणों से चल!

[२]

हिलने दो, दो पल हिलने दो,
मेरे ऊपर किसलय-वन को,
पत्रों के अन्तर से छन कर,
मेरे श्रम - व्याकुल मस्तक पर
शशि की दो किरणें गिरने दो!

[३]

मेरा सब चलना व्यर्थ हुआ,
कुछ करने में न समर्थ हुआ,
मेरा जीवन साँसें खो कर,
पड़ गया आज निर्जन पथ पर,
उस श्रम का ऐसा अर्थ हुआ !

[४]

अब प्राणों में बल शेष नहीं,
उर में आशा का लेश नहीं,
आँखों में आँसू भरे हुए,
चरणों पर किसलय झरे हुए,
सूनापन फैला सभी कहीं !

[५]

जिस की आँखों का दास बना,
जिस के चरणों पर उर अपना
अर्पित कर, सुध-बुध सब खोकर
मैं रहा दौड़ता पृथ्वी पर,
वह निकली हाय, निरी छलना !

[९]

मिट जाएँ सुख दुख के बन्धन,
भूल जाए सुधा-रस में जीवन,
उड़ जाए उर का सब विषाद,
प्राणों में करती कल-निनाद
घुस आवे सुख की बाढ़ सघन !

[१०]

निर्जन धरती पर पड़ी नाव,
देखे इन लहरों का प्रभाव,
सुख के द्वीपों में जाने का,
तारों के नीचे गाने का,
इस के प्राणों में उठे चाव !

[११]

यह डरे नहीं तूफानों से,
मेघों के कर्कश गानों से,
यह सहे प्रलय के महाघात,
वज्रों की दारुण अशिव बात,
यह सुने स्वयं निज कानों से !

[१२]

फिर भी यह चलती हुई रहे,
दुख का उर दलती हुई रहे,
शोकों की काली लहरों पर,
निर्मल पालों को फहरा कर,
यह निशि-दिन सुख की ओर बहे !

[१३]

है कहाँ हाय, वह शान्ति तीर
मिट जाती जिस को देख पीर ?
उर में ले दुख के दीर्घ घाव,
मेरे प्राणों की थकी नाव,
खोजती आज उस को अधीर !

[१४]

बरसो ओ करुणा घन प्रशान्त !
यह हृदय ताप से हुआ क्लान्त !
बरसो आशा से गरज-गरज !
बरसो सुर धनुओं से सज-धज !
बरसो मेरे दुख से अशान्त !

[१५]

सूना आँखों में जल भर दो,
सूना उर आज मुखर कर दो,
झरनों में भर दो नई जान,
नदियों में भर दो नये प्राण,
तुम उर्वर कर दो ऊसर को !

[१६]

आया था जिस को रो-रो कर,
वह रह न सका मेरा हो कर,
लौटेगी फिर वह लहर नहीं,
दीखेगा पृथ्वी में न कहीं,
अब वह मुख लज्जा से सुन्दर !

[१७]

वह कथा उठी थी आशा में,
सुख की उत्साहित भाषा में,
क्षण भर तो जग में व्याप्त हुई,
पर देखो आज समाप्त हुई
आहों में और निराशा में !

[१८]

स्वप्नों का घर वह उजड़ गया,
आँसू से अंकन बिगड़ गया,
जिस के चरणों पर जीवन भर,
थे सुने दिव्य विहगों के स्वर,
वह वृक्ष मूल से उखड़ गया !

[१९]

मैं हूँ आश्रय से हीन आज,
नयनों के जल से दीन आज,
उर में ले शापों की ज्वाला,
सुनता हूँ हो कर मतवाला,
मैं शान्त मृत्यु की बीन आज !

[२०]

प्रिय स्वप्न, सत्य तुम क्यों न हुए,
आँखों से उड़ अब कहाँ गए ?
तुम रहे रात भर साथ साथ,
अब जब आया था प्रिय प्रभात,
तब तुम पल भर भी क्यों न रहे ?

[२१]

बह-बह ओ प्यारी प्रात पवन
कर फूलों की मृदु सुरभि वहन
मैं सो न सका हूँ आज रात,
कब आवेगा प्यारा प्रभात,
कहते हैं मेरे जल भरे नयन !

[२२]

जीवन में इतना अंधकार
उफ़ ! प्राणों पर यह असह भार !
चिर तिमिर पाश में बंधा हुई,
आँसू बरसाती खोज रही,
ये आँखें नभ में ज्योति द्वार !

[२३]

मैं नहीं चाहता था रोना
धुंधले अतीत में दिन खोना
इच्छुक था आगे बढ़ने का
आँधी पानी से लड़ने का !
पर मुझे न था वैसा होना !

[२४]

हो जाता घोर पतन जब है
उत्थान न क्या फिर सम्भव है !
आशा का दीपक बुझ जाता
जिसका, वह पुनः न कर पाता
क्या, दीप जलाकर उत्सव है ?

[२५]

क्या सहा और क्या नहीं सहा !
क्या कहा विश्व ने क्या न कहा !
जब तक तुम थे उर के भीतर
आशा थी, सुख था पृथ्वी पर
अब तुम न रहे कुछ भी न रहा !

[२६]

बिजली-सी क्षण भर घट आई,
स्वर्ग की कौंध दृग में लाई,
देखे मैंने गिरि, ग्राम, नगर,
देखा तम का प्रदीप्त अन्तर,
सब ओर अँधेरी फिर छाई !

[२७]

हंसों-से फैले पर निर्मल,
उड़ गये अनन्त सुखों के दल,
सूखा सर, बिखरा नीरस दल,
सूखा जीवन का प्राण कमल,
सब ओर पंक है अब केवल !

[२८]

तुम प्राणों के भी प्राण मित्र !
जीवन निर्मल गान मित्र !
शिशुपन के सहचर, यौवन के
आशा-प्रदीप, डगमग मन के
विश्वास रूप पावन चरित्र !

[२९]

मेरी हारें स्वीकार करो,
मुझ को इस तम से पार करो
मेरी बाँहों में बाँहें धर
उज्ज्वल प्रकाश के शिखरों पर
तुम मेरे साथ साथ विचरो !

[३०]

सिखलाओ जीना विष पी कर,
सिखलाओ हँसना पृथ्वी पर,
उर में वह साहस पारस दो,
मन के विकृत कालायस को
कर देता जो सुवर्ण सुन्दर !

[३१]

गिरि से सुदूर मैं ने देखा
थी चमक रही मणि की रेखा,
अस्पष्ट क्षितिज के अन्तर पर
वह ऐसी थी लग रही सुघर,
मेघों में जैसे शशि - लेखा !

[३२]

जय-जय कल्याणि अलकनन्दा !
शैलों में फिरती निर्द्वन्द्वा !
माता पवित्र हिम लहरों की,
स्मिति- सी शंकर के अधरों की,
आनन्द - मूल परमानन्दा !

[३३]

इन शुचि लहरों में छिपी हुई,
है वह मुझ को क्या देख रही !
मेरी गीली पलकों पर आ
लग गई अचानक तरल हवा,
यह क्या उस की निश्वास बही !

[३४]

थे जला गए तेरे तट पर,
माँ, उसे लोग, आँसू भर-भर,
मैं खोज रहा उस को कब से,
वह मेरी बहिन गई जब से,
उर टूट गया ज्यों गिरि से गिरि कर !

[३५]

ओ माँ, वे लहरें कहाँ गईं !
मेरे बचपन में खेल रहीं—
थीं जो तेरे प्रशस्त उर पर,
बदला स्वर, हुआ जरा जर्जर,
तुम भी अब पहली-सी न रहीं !

[३६]

अब वृन्त गए फूलों से भर,
हो गई दिशाएँ गीत मुखर,
हो गए हरित अब वन-प्रान्तर,
पृथ्वी पर है बिछ गई सुघर
दूर्वा की अब कोमल चादर !

[३७]

कटक बन चुभते नये फूल,
आँखों को देती कष्ट धूल,
लगता न आज कुछ कहीं भला,
नभ से रवि का रथ गया चला,
रोता सरिता का मलिन कूल !

[३८]

ओ स्वर्ग ! मुझे तुम दो प्रकाश,
मेरे ओठों में भरो हास,
मेरे तन को दो स्वास्थ्य नवल,
मेरे प्राणों को करो सबल,
मुझ को न करो जग में उदास !

[३६]

आ गया शरद पृथ्वी में लो !
हँस रहा चन्द्रमा पुलकित हो,
तारों से अब सज गया गगन,
सज गई आँसुओं से चितवन,
ओस है सजाती दूर्वा को !

[४०]

अब दुख में कंठ भर आता,
मैं सुख न कहीं जग में पाता,
सोने की छाँह पड़ी जग पर,
पेड़ों पर लटके फल पक कर,
हलका हो कर किसान गाता !

[४१]

मुझ को न हँसा पाती किरणें !
मुझ को न जगा पातीं पवनें
देते अब पुष्प प्रमोद नहीं,
हँसती पृथ्वी की गोद नहीं,
जीवन-खग विकल लगा उड़ने !

[४२]

प्यारे जीवन, ओ प्रिय जीवन,
शशि को देते थे तुम्हीं किरण,
तुम गये अब इसी लिए,
आँखों पर तम का जाल दिए,
शशि करता है विष का वर्षण !

[४३]

उन्माद स्वरों में तुम गाओ,
वह खोया युग लौटा लाओ,
मैं बहुत रो चुका हूँ दुख से,
अब अन्त-हीन निर्मद सुख से,
तुम रोओ मुझे रुलाओ !

[४४]

हो गया नया मेरा विषाद,
है गया नया मेरा प्रमाद,
पृथ्वी में आया नया वर्ष,
वृक्षों में उमड़ा नया हर्ष,
अब हुई नई शोक की याद !

[४५]

पूर्व में फूटता है प्रभात,
पृथ्वी से है जा रही रात,
खोलतीं पलकें सोई आँखें,
अब चमक रहीं धोई पाँखें,
फूलों के हिलते चमक पात !

[४६]

तू, जग में ला रवि किरणों को,
नयनों में सुन्दर वर्णों को,
सोई संसृति को जागृत कर,
आलोक जाल से जग भर को,
गति से विहगों को, पर्णों को !

[४७]

जो भी रोया तुम ने उस के,
आँसू निज पलकों पर धारे,
जो भी आया इस शय्या पर,
सोया सुख से वह निशि भर,
कोई भी न निराश हुआ !

[८८]

हे दुखियों की शय्या प्यारी !
हे दूर्वे ! हे निद्रे न्यारी !
हे मेघों की प्रिय कोमलता !
चरणों के प्राणों की ममता !
युग-युग तक जीओ हे सुकुमारी !

गीत माधवी

[१]

अब छाया में गुंजन होगा
बन में फूल खिलेंगे !
दिशा - दिशा से अब सौरभ के
धूमिल मेघ उठेंगे !

[२]

अब रसाल की मंजरियों पर
पिक के गीत झरेंगे,
अब नवीन किसलय मारुत में
मर्मर मधुर करेंगे !

[३]

जीवित होंगे बन निद्रा से
निद्रित शैल जगेंगे ।
अब तरुओं में मधु से भींगे
कोमल पंख उगेंगे !

[४]

नद तीर पर फैली दूबा पर
हरियाली जागेगी ?
शान्त हिम रितु अब जीवन में
प्रिय मधु - रितु आवेगी !

[५]

सोवेगी रवि के चुम्बन से
अब सानन्द हिमानी !
फूट उठेगी अब गिरि गिरि के
उर से उन्मद वाणी !

[६]

हिम का हास उड़ेगा धूमिल
सुर धुनि की लहरों पर,
लहरें झूम - झूम नाचेंगी
सागर के द्वारों पर !

[७]

तुम आओगी इस जीवन में,
कहता मुझ से कोई,
खिलने को है व्याकुल होता,
इन प्राणों में कोई !

[८]

कैसी होगी वह अनुपम छवि,
रूप माधुरी प्यारी ?
वह अध खुले दृगों की सुषमा
चाल लाज से भारी !

[९]

उन सुकुमार मृदुल हाथों में
क्या होगा पीने को ?
सुधा हाय क्या मुझे मिलेगी
जीवन कुछ जीने को ?

[१०]

क्या रस होगा उन अधरों में
छू कर जिन में मुझ को—
विवश करोगी ढुलकाने को
तुम सुर प्रिया सुधा को ?

[११]

अब तक कभी न मेरे उर पर
चले चरण वे पावन,
चिर मृत तरुओं में करते जो
विकसित उज्जवल जीवन !

[१२]

अब तक कभी न देखे मैंने
अलि, शशि के पीछे उड़ते,
सुने न मैं ने शशि के मुख में
मधुर सुधा के स्वर झरते !

[१३]

अब तक कभी न देखे मैंने
भौंहों के नीचे चंचल,
छिपते अपने ही कोनों में
नयन लाज में व्याकुल !

[१४]

देखी मैंने मृगी वनों में,
पर वह रहती सदा डरी,
मुझे मिलेगी कब वह चितवन
प्रेम और विश्वास भरी !

[१५]

कब देखेंगे दृग उस छवि को
इक जीवन के पथ पर ?
कब जीवन को सिक्त करेगी
घटा सुधा की हँस कर ?

[१६]

फूलों के निर्मल विपिनों से
मधु से हो मद - माते;
कब आओगी मेरे गृह में
तुम बाँसुरी बजाते ?

[१७]

मेरी दृष्टि करेंगे व्याकुल
कब उड़ केश तुम्हारे ?
मुझको मिलेंगे बन-छाया में
कब आश्लेष तुम्हारे ?

[१८]

कब धर मेरी गोदी में सिर
पुष्पित तरु के तल पर,
एक कुसुम - सी सो जाओगी
तुम सालस कुछ कह कर ?

[१६]

नयन चाहते मेरे अनिमिष
तुम्हें देखते रहना,
कर्ण चाहते सदा तुम्हारे,
सलज स्वरों में बहना !

[२०]

बाहु चाहतीं तुम्हें बनाना,
सलज बन्दिनी अपनी,
प्राण चाहते तुम्हें पूजना,
अयि रहस्यमयि रमणी !

[२१]

कोई करता स्नेह चन्द्र को,
कोई उस में हरता,
कोई करता प्यार हवाएँ,
कोई किरणें पीता !

[२२]

कंचन औ मोती ठुकरा कर
यह भिक्षुक कर क्रंदन,
बाँहें फैला माँग रहा है,
मधु-लक्ष्मी के आलिंगन !

[२३]

जिसे देख कोकिल के उर में
उठती उन्मद वाणी,
इस जीवन में कब आवेगी,
वह शोभा कल्याणी !

[२४]

मधुर स्वरों में उसे कभी मैं
बन्दी भी कर पाऊँगा ?
रेखाओं के बीच कभी क्या,
जीवन भी दे पाऊँगा ?

[२५]

बहने लगी पवन हिम-गिरि की
शिखरों से आनन्द भरी,
होने लगी सजग सुर-धुनि की
लहरें हिम से ठिठुरी !

[२६]

हिम के मेघ गये अम्बर से
हुई मुक्त शशि वदनी,
गई कठिनतम शीत भूमि से,
हुई मधुर फिर रजनी !

[२७]

हुए बसन्ती दिन कुछ लम्बे
कुछ छोटी अब रातें,
लगीं बदलने धीरे - धीरे
सुख में दुख की बातें ;

[२८]

हिले धूमिल नभ के कोने
गत पुलिनों में मर-मर,
ज्योत्स्ना सी बन गई अचानक
धूप सुरभि को छू कर!

[२९]

खुलीं वेणियाँ दिग्वधुओं की
मृदु गरजीं वेलाएँ,
लज्जित हुईं वन-स्थलियों में
मद विह्वल लालाएँ!

[३०]

पत्रों के अंबुधि झकोरती
विपुल पराग उड़ाती,
दिशा-दिशा में आज बह चली
पवन भरी मद माती!

[३१]

लड़ा मत्त बाहों से बाँहें
चीड़-वनों से निकला,
चिर-चंचल प्रवाह सौरभ का
पीत ज्योति-सा उजला!

[३२]

खींच लाज के पतले बादल,
रवि ने कर मनमानी,
चूमा मुकुलित पद्म लोचना
अनुरागिनी हिमानी !

[३३]

तरुण हो गई अब रवि किरणें,
गलने लगी हिमानी,
सरिताओं में लगा गरजने
हिम में धूमिल पानी !

[३४]

जगे शैल प्रान्तर निद्रा से
वहें मुक्त हो झरने,
स्वच्छ गगन के निर्मल कोने,
लगे हृदय को हरने !

[३५]

हँसी दिशाएँ, चमके तारे,
बहीं सुशीत हवाएँ,
मेघों से फिर बनी मनोहर
रागारुण संध्याएँ !

[३६]

निरख रेख हिमगिरि की तप में,
मृदु पद धर कर आई,
लगा मनोहर अंचल मुख पर
ज्योत्स्ना मृदु मुसकाई!

[३७]

नाचीं लहरें दिशा - दिशा में
फैलीं दीप्त प्रभाएँ,
काँप उठीं धूमिल दीपों में
उज्ज्वल तरल प्रभाएँ!

[३८]

चारों ओर विकल चंचल कर
अब शोभा का सागर,
लगा उमड़ने अस्थिर होकर
तृण तरुओं से बाहर!

[३९]

वधुओं के लज्जित भावों से
मधु में डूबे सुन्दर,
उग आगे तरुओं में सकुचे
किसलय विरल मनोहर!

[४०]

खग विरंग विहगों के दल
नव पवनों में बहते,
आने लगे दूर देशों से
कोमल कूजन करते !

[४१]

चढ़ने लगी बाल विपिनों पर
हरियाली की छाया,
आने लगी क्षितिज में मन हो
निकट वनों की माया !

[४२]

उड़ने लगीं तितलियाँ, निकले
भ्रमर गूँजते बाहर,
लगीं भिनभिना गूँज मक्खियाँ
मृर्ता वन दूर्वा पर !

[४३]

पत्रों की नीली सीपी में
मुकुलों के रत्नाकर,
लगे उमड़ने मृदु प्रकाश से
पवनों को दीपित कर !

[४४]

कुछ स्थिर हुए विकल चंचल दृग,
कुछ परिचित-सा हुआ गगन,
मिटा हृदय का भय, कुछ परिचित
हुए पवन के चुम्बन !

[४५]

लहरा उठीं वनों में चंचल
जीवन की ज्वालाएं,
जलने लगीं ताप से मधु के
निशि दिन विकल हवाएँ !

[४६]

मधु से भरे गगन के कोने
मधु से काँपे बादल !
मधु से भरा धरातल, मधु से
हुए पवन घन चंचल !

[४७]

डूबी भरा विपुल लज्जा में
मधु को देख वधू सी,
छिप न सकी भीतर ही भीतर
ध्वनि मृदु 'कुहू - कुहू' की !

[४८]

अब सौरभ में पीन दिशाएँ,
अलसित थकित समीरण,
अब परिमल में डूबे भ्रमरों
के मद गुंजन जीवन!

[४९]

हो जाता मारुत स्पर्शों से
अब व्याकुलतम जीवन!
इन वनों की ओर देख कर
अश्रु भर आते लोचन!

[५०]

पलकों से मोती की बूँदें—
झर आती गोदी में,
उड़ती रहती एक व्यथा-सी,
पिक की व्यग्र निकुंज में!

[५१]

छायाओं से मृदु स्वर आते,
अब मारुत में चल कर,
उड़ता जाता शून्य पथों में
धूल उदास मनोहर!

[५२]

अब, सूने गृह में डोलेगा
को मुझ सा अकेला,
मधु-मक्खी की गूँज जगाती
व्यथा अनन्त अलबेला!

[५३]

अब भ्रमरों को सुखी देखकर
देख सुखी तरुओं को,
देख सुखी विहगों को, होता
दुख अनजाने उर को!

[५४]

लेट मधुर किरणों के नीचे
हरी भरी दूबों पर,
जाने क्यों उदास गानों से
भर आता अब अन्तर!

[५५]

अब वातायन खोल प्रतीक्षा
करता हूँ मैं तेरी,
मधुर पवन में कब आवेगी
तन सुगन्ध वह तेरी।

[५६]

पीत चाँदनी सुख देता है,
पवन मुझे छू जीवन,
मुझे तुम्हारे देश बहाते
किरणों के आलिंगन !

[५७]

द्वार खोल कर अपने गृह के
अब मैं करता सदा शयन,
तुम्हें मार्ग देने सिरहाने
रहता दीपक खोल नयन !

[५८]

हलके वसन पहिन जाता मैं
तुम्हें खोजने बाहर,
जब ऊषा की लाली जगती
खग जगते तरु-तरु पर !

[५९]

तुम्हें खोजने जाता मैं, जब—
पृथ्वी की पलकों से,
उड़ती रहती धूमिल निद्रा
मारुत के झोंकों से !

[६०]

जब पश्चिम में ढलती, निशि-भर
हँस-हँस थक शशि वदनी,
सोए प्रिय को हेर जागती
जब अँगड़ाती रागिनी !

[६१]

जब अम्बर में तारक उड़ते
और दृगों से सपने,
गृह गृह में दीपक खोते जब
गौरव अपने अपने !

[६२]

जब प्रसन्न रहता सचराचर
उड़ती पवन मनोहर,
आँखों में लहराता रहता
जब शोभा का सागर !

[६३]

खिल जाता सौन्दर्य कमल जब
इन आँखों के आगे,
यौवन निर्मल हो उठता जब
प्रिय नभ की सुषमा से !

[६४]

पूर्व दिशा में उड़ने लगते
जब, कुंकुम के बादल
धरणी पर है गिरने लगता
जब, अनुराग सुकोमल!

[६५]

खोल मनोहर केसर के पर,
रवि - रथ में उड़ उड़ कर,
जब, समूह किरणों के गिरते,
निर्मल हिम - शिखरों पर!

[६६]

तुम्हें खोजने जाता हूं मैं,
जब, मेरे मस्तक पर,
पड़ती है आनन्द - स्पर्श - सी,
किरण व्योम से गिर कर!

[६७]

तुम्हें खोजने जाता हूं मैं,
नित जीवन के पथ पर,
जब छाये रहते हैं आँसू
दूर्वा की पलकों पर!

[६८]

सूने पथ में मुझे सुनाते
विहग, हर्ष की ध्वनियाँ,
आस-पास मुसकाने लगतीं
जब वृन्तों पर कलियाँ!

[६९]

जब देता रवि खोल स्वर्ण का
जग आँखों के आगे,
खुल पड़ते जब द्वार हृदय में
अन्त हीन आशा के!

[७०]

मिलतीं मुझे अकेले पथ पर
कितनी ही सुन्दरियाँ,
मुझे अकेले पा कर हँसतीं
कितनी मोहन परियाँ!

[७१]

मेरे चारों ओर विचरतीं
कितनी सूनी साँसें,
मेरी अलकें कंपित करतीं
कितनी मधु निश्वासें!

[७२]

मुझे देख होती थी जिस की
चाल लाज से भारी,
साथ - साथ चलती, बन कर—
ढीठ वही सुकुमारी !

[७३]

घूँघट उठा मधुर हँस कोई
इस चंचल मन - मृग पर,
कर सर - वर्षा, छिप जाती है
तड़िल्लता - सी सुन्दर !

[७४]

कोई बन गम्भीर फुला मुख
मेरे पीछे चल कर,
सखियों में उत्थित कर देती
लहर हँसी की मनहर !

[७५]

कहती कोई अपने मुख से
घूँघट जरा हटा कर
किसे खोजने तुम फिरते हो
इन सूनी राहों पर ?

[७६]

मैं हँसते - हँसते सहता हूँ
इन के ये उत्पीड़न,
इन्हें ज्ञात क्या! देख चुके हैं
तुम को मेरे लोचन!

[७७]

देख इन्हें, आती मुझ को
सुधि है प्रिये तुम्हारी,
देख इन्हें, जगती है मुझ में
मोहन मूर्ति तुम्हारी!

[७८]

आँखों में कल्याण तुम्हारे
चरणों में जग मंगल,
स्पर्शों में विकास की पीड़ा
हँसने में सुख निर्मल!

[७९]

तुम नव जीवन की वर्षा - सी
घिरी हुई कुसुमों से,
राज रही होगी विद्युत - सी
सुर धनुषी मेघों से!

[८०]

लहराई मधु-मयि सरि के
    तट पर एक शिला पर,
बैठी होगी तुम हँसती
    जल में चरण डुबो कर ?

[८१]

खुला हुआ होगा अलि वर्णी
    वेणी का कोमल बन्धन,
हिला रहा होगा, अलकों को
    लहरों से उठ शीत पवन ?

[८२]

खिसक रहा होगा भू पर स्वर्ग-
    धाम से गिर अञ्चल !
उड़ते होंगे सरल पवन में
    जटिल केश उच्छृंखल !

[८३]

इंगित करती होगी मुझको,
    क्या वे कुंचित अलकें ?
मुझे खोजती होंगी क्या वे
    चन्द्रानन की झलकें ?

[८४]

काँप रहे होंगे गालों में
अधर सुधा से गाले !
और भरे होंगे आँखों में
सुख के अश्रु रसाले !

[८५]

जाने कब कौतुक में ऐसे
समय बिताना तज कर,
आ आओगी मेरे पतझड़ में
नव कुसुमों को लेकर !

[८६]

जहाँ मधुमति भूमि जहाँ है
बहती मधु सरिताएँ,
जहाँ दिगन्तों से बहती हैं
मधु से सिक्त हवाएँ ?

[८७]

उस देश की राज कुमारी,
मधु सरिता के तट पर,
जाने किस का चिन्तन करती,
निज नयनों को भर कर !

[८८]

घूम हरिण - दिन भर बन में
बिता छाँह में दोपहरी,
मैं घर फिरता हिमगिरि पर जब
होती साँझ सुनहरी!

[८६]

मिलन - गीत गाता गिरि - पथ पर
मुक्त कंठ निर्झर झरता,
मैं घर फिरता गुफा - गुफा को
अपने कलरव से भरता!

[६०]

गौएँ फिरतीं निज वत्सों को
दूध लिये थन भर के
मैं फिरता हूँ निज आँखों में,
सूने बादल भर के!

[६१]

मैं विस्मृत - सा जग में रहता,
रूप तुम्हारा पा कर,
हर्ष - गीत - सा मैं फिर आता,
संध्या के अधरों पर!

[६२]

मैं खग - सा, मारुत - प्रवाह को

चीर, मधुर गुंजन कर,

रजनी की अलकों पर आता

उड़ तारा सा सुन्दर !

[६३]

द्वार खोल कर जाता जब मैं

सूने घर के भीतर,

मिलती मुझे गवाक्षों से झर

पड़ी चाँदनी भू पर !

[६४]

मिलती मुझे सेज पर बिखरी,

कोमल हँसी गगन की,

प्राण देखते एक झलक - सी

ज्योत्स्ना के अधरों की !

[६५]

यह हिमगिरि की पावन शोभा ;

कल - कल ध्वनि गंगा की,

देवदारु के बन से उठती

ये लहरें आभा की !

[६६]

यह, फूलों की मौन माधुरी,
    यह मृदु हँसी गगन की!
इस, अनन्त सुख के सागर में
    डूबी छवि वसुधा की!

[६७]

मैं बन गया मूक स्वर सुख का,
    शशि के उर को छू कर,
मैं जैसे चुपचाप खो गया,
    जा, फूलों के भीतर!

[६८]

मेरा उर आनंदित होकर
    खिला कुसुम-सा सहसा,
वही पवन, प्राणों पर मेरे
    हुई सुधा की बरसा!

[६९]

चले गये सौरभ से उड़ कर
    मेरे प्राण पवन में,
हँस सदृश मैं घूम रहा हूँ
    कब से निरभ्र गगन में!

[१००]

मुझे भुलाती हुई चाँदनी,
किस नभ में ले आई!
नहीं जहाँ है जग की शोभा
मलिन तनिक हो पाई!

[१०१]

शशि की निस्वन शोभा, कितना
दुख हर लेती जग का!
और, विधाता, इसे मिलेगा,
वर, हँसने - रोने का!

[१०२]

डुबा व्यथा को अपने रस में
मुझ में प्रभा जगा कर,
जाने कहाँ लिए जाती है;
मुझे हृदय पर धर कर!

[१०३]

यह प्रशान्ति जीवन की है या
वेदन - हीन मरण की!
मोह रही है मुझ को माया
यह किस के दर्शन की!

[१०४]

यह मेरे जीवन का सुख है,
था, दुख जो है मुझ को :
गोदी में रख सुला रहा है
प्राणों के प्रिय शिशु को ?

[१०५]

यह है कौन, निराशा अथवा
चिर परिचित प्रिय आशा ?
इतना सुख दे जिस ने छीनी
इन अधरों की भाषा ?

[१०६]

इसी भाँति आशा में, जीवन
की कुछ रातें बीत चलीं,
ज्योत्सना के अधरों की स्मितियाँ
धीरे - धीरे बीत चलीं ?

[१०७]

छोड़ दिया ज्योत्स्ना ने मुझ को,
अपनी मृदु बाँहों से -
स्वर्ग - भूमि में रह न सका मैं,
अपनी ही आहों से !

[१०८]

चन्द्र लोक से मैं जब लौटा
फिर निज गृह के भीतर,
मेरे प्राणों में विषाद था,
आँसू थे पलकों पर!

[१०९]

अन्त हीन तम हर देता जा
हँस कर अखिल भुवन का,
हाय, न वह भी हर सकती है
तम इस दीन सदन का!

[११०]

मेरे गृह को घेर बह रहा
यह ज्योत्स्ना का सागर!
अंधकार आश्रय पाता पर
मेरे घर के भीतर!

[१११]

मेरे मुख की शोभा ले कर,
डूब गई शशि-वदनी,
मुझे जगा मेरे स्वप्नों से,
गई गगन से रजनी!

[११२]

चन्द्र-बिम्ब-सा डूब गया मैं,
अम्बुधि की लहरों में,
समा गया मैं एक राग-सा,
उठते कंठ-स्वरों में !

[११३]

चली गई चुपचाप चाँदनी,
पृथ्वी का सुख लेकर,
गिरने लगा धरा के ऊपर,
तम मेघों-सा झर झर !

[११४]

मणि-विहीन फणियों-सी व्याकुल
हुई तरंगे सागर की,
रह न सकी जैसी थी वैसी,
ध्वनि अंबुधि की लहरों की !

[११५]

द्वार रुद्ध कर पड़ी दिशाएँ
दीप-हीन भवनों में,
झरीं सघन तम की धाराएँ,
पृथ्वी के नयनों में !

[११६]

डूबे गिरि सूने विषाद में
छोड़ दिया नभ ने हँसना,
छोड़ा धरती ने फिर निशि में,
उजले वसन पहिनना ?

[११७]

बहल, दिशा में घेर गगन को,
उठ प्राची मे शिखरों पर,
करती है चुपचाप प्रतीक्षा
अब, शशि की लोचन भर ?

[११८]

अब, उत्तर की ओर हिमालय
के शिखरों पर धुँधली,
बैठी है निराश मेरी आशा,
वह मुरझी हुई कली !

[११६]

बहती रही पवन दक्षिण से
पर न हृदय यह हरा हुआ,
सरस ग्रंथियों में जीवन की,
रहा मरण ही भरा हुआ !

[१२०]

कोकिल के कमनीय कंठ में,

आई कोमल वाणी,

मेरी ओर न आई पर तुम,

मधुर स्वरों की रानी ?

[१२१]

उगे नये किसलय तरुओं में

लतिकाओं में कोमल फूल !

मेरे चिर प्रतिकूल दैव पर,

हुए न हा ! मेरे अनुकूल !

[१२२]

रूप - हीन, गुण - हीन, जगत के

शून्य किसी कोने में

मैं रहता हूँ जीवन कटता

यह आँसू बोने में !

[१२३]

बैठ विजन तट पर संसृति के

आँखों में आँसू भर,

उन्हें देखता मैं, जो जाते

घोर गरजते सागर !

[१२४]

पग धर अरियों के मस्तक पर,
उठा शस्त्र पवनों में,
विजय नृत्य जो करते रहते
यम के भीम वनों में!

[१२५]

दुख के शत मुख क्रुद्ध भुजग को
मार पटक पृथ्वी पर,
उस की मणि अपने किरीट में
जड़ते जो मृदु हँस कर!

[१२६]

दलित दीन देशों के पीड़ित
जर्जर दुख से हिलते,
कंकालों में तरुण रुधिर से
जो, नव जीवन भरते!

[१२७]

उन्हें देखता मैं जो काँटों
में निज प्राण बिछाते,
काल-कूट पी कर, त्रिभुवन को
निर्भय कर मर जाते!

[१२८]

उन्हें देखता पूरी होतीं
जिन की सब आशाएँ,
पृथ्वी में सुख ही सुख मिलता
जिन को दाँएँ - बाँएँ !

[१२६]

तुच्छ धूलि से उठ सहसा ही
भर प्रताप से अम्बर,
सूर्य सदृश, निष्कंटक करते
जो पावन भुवनान्तर !

[१३०]

जो नवीन काव्यों को देते
पृथ्वी के हाथों पर,
जो नवीन गीतों से भरते
अभर धरा के सुन्दर !

[१३१]

नये-नये स्वप्नों से निर्मल
पृथ्वी के लोचन भर,
जो नवीन गीतों से करते
झंकृत पवन मनोहर !

[१३२]

पत्र-हीन मेरे वन के तरु,
पुष्प-हीन है उपवन,
सूना है यौवन का कुंज
होता कहीं न गुंजन !

[१३३]

मेरे आर्द्र कंठ में बसते,
हाय नहीं वे मृदु स्वर,
जिन पर करते कठिन शत्रु भी
अपने वैर निछावर !

[१३४]

मुझे नहीं आता कानों में
अपनी प्रीति सुनाना,
गूँज मधुप-सा किसी कमल के
जीवन प्राण लुभाना !

[१३५]

मुझे ज्ञात है नहीं राह वह
जिस पर चलते हुए चरण,
पहुँच तुम्हारे आँगन में
करते और कहीं न गमन !

[१३६]

क्या है मेरे पास विश्व मे,
एक आशा को तज कर,
क्या बल है मेरे प्राणों में
प्रेम तुम्हारा तज कर ?

[१३७]

पतझड़ में सर्वस्व लुटा कर
काँप-काँप गो निर्धन,
जाने किस आशा से यह तरु
काट रहा है जीवन !

[१३८]

आज स्वयंवर-सभा जुटी है
देश देश के शासक,
बैठे रत्न जटित मचों पर
बना वेश मन-मोहक !

[१३९]

मेरे माथे पर न मुकुट है,
हार नहीं छाती पर,
श्रवणों में मेरे न डोलते,
कुंडल मणि-मय सुन्दर !

[१४०]

हिम-गिरि और उदधि के रहते,
क्यों चन्द्रिका कुमारी,
होना चाहेगी इस फूलसे
उजड़े तरु की प्यारी !

[१४१]

हाय, कौन मैं ! जो आओगी
तुम मुझ को वरने,
क्यों होंगे सच्चे, इन दुर्बल,
दीन दृगों के सपने !

[१४२]

गज पर चढ़ कर तूर्य घोष से
कर संसृति को विस्मित,
मैं न तुम्हारे पुर में आया,
करने तुम को हर्षित !

[१४३]

पतझड़ भर चल नंगे पाँवों
नव बसन्त के पहिले दिन,
प्रणय-पुरी में मैं पहुंचा हूँ
गोधूली-सा धूलि मलिन !

[१४४]

हार गये जग के कितने नृप,
लेकर वैभव अपने,
राजकुमारी को पाने के
व्यर्थ हुए सब सपने ?

[१४५]

प्रीति-नगर में मैं परदेशी
दूर देश से आया,
एक भिखारी राज-सुता को
वरने को है आया ?

[१४६]

हाय ! कौन मैं ! हृदय भरा क्यों,
यह इतनी आशा से ?
इस कुहरे को प्रेम हुआ क्यों,
रवि की दीप्त-प्रभा से ?

[१४७]

नहीं ! नहीं ! पतझड़ के साथी
इन तरुओं को तज कर,
शरण कहाँ है मुझ अनाथ को
चरण तुम्हारे नम कर ?

[१४८]

लता-लता आलिंगित करती,
छाया में मृदु गाती,
हाय ! तुम्हीं थीं क्या ? वन पथ में,
सुमनों को छितराती !

[१४९]

मैं हूँ दीन, दीन है मेरी
वास-भूमि भी प्यारी,
मेरी काँटों की धरती है,
तुम कुसुमों की प्यारी !

[१५०]

किसी फूल के उर में फैला,
अपनी सहज सरलता,
कँपा किसी को दे कर अपने
शैशव का भय पिगता !

[१५१]

खिला किसी को नदी किनारे,
हंसाकुल लहरों पर,
और किसी को गिरि के ऊपर,
जहाँ डूबते दिन-कर !

[१५१]

जगा किसी को स्तब्ध निशा में,
सुरभि - भरे चुम्बन से;
और किसी की हर प्रभात में,
मधु निद्रा लोचन से!

[१५३]

भाँति - भाँति के फूलों को ले,
मधुर स्वरों में गाती,
दिशा - दिशा से उमड़ तुम,
धरती पर छा जाती!

[१५४]

मुझे बुला निर्जन छाया में,
आते ही उड़ जाती,
चारों ओर छिपी फूलों में,
तुम मुझ पर मुसकाती!

[१५५]

मुझे चूम उड़ जाते सहसा,
चुम्बन कभी तुम्हारे!
कभी नींद मेरी छू जाते,
कोमल वचन तुम्हारे!

[१५६]

कभी पास अत्यन्त पास आ,
जीवन के मृदु स्वर कर,
बैठ देर तक करती रहती,
तुम बातें हँस-हँस कर!

[१५७]

भूल गया मैं, भूल गया मैं,
उपालंभ वे सारे,
सुख-दुख मिले कुसुम-परिमल बन,
बन में देवि तुम्हारे!

[१५८]

स्वार्थ छोड़ अब प्रेम हृदय का,
फैल गया जग भर में,
अब सब को अपनाने वाली
दृष्टि जगी अन्तर में!

[१५९]

कहाँ रहो तुम कहीं छिपो तुम,
तुम प्यारी मेरी भी,
करो किसी को सुखी बनेगा,
वह सुख कुछ मेरा भी!

[१६०]

तुम मेरी ही नहीं अकेली,
तुम प्रिय हो स्वर - स्वर की,
मेरी प्राची की सुकुमारी
तुम हो लहर लहर की !

समर्पण

दुख के अकेले और अंधकार पूर्ण दिनों में जब कि सब मित्रों ने मुझे छोड़ दिया था उस समय भी जिस का अडिग प्रेम आशा का दीप बन कर मेरे सिरहाने दिपता रहा, मुझे प्रकाश देता रहा, प्राणों से भी प्रिय उसी मित्र को 'छोटे गीत', 'गीत-माधवी' तथा 'नंदिनी' के रूप में यौवन के आँसुओं की यह तुच्छ भेंट सप्रेम अर्पित है।

—चन्द्र कुँवर बर्त्वाल

चन्द्र कुँवर बर्त्वाल